शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

सम्पादकीय

आज के सवाल और साहित्य: संत विनोबा की दृष्टि

डॉ.पुष्पेंद्र दुबे
महाराजा रणजीत सिंह कॉलेज ऑफ प्रोफेशनल साईंसेस
इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

विज्ञान युग में पूरी दुनिया एक गांव में रूपांतरित हो गई है। इसे 'ग्लोबल विलेज' की संज्ञा भी दे दी गयी है। दुनिया के देशों ने आर्थिक पक्ष को आधार बनाकर वैश्वीकरण को अपनाया। किसी जमाने में यही कार्य आध्यात्मिक मूल्यों ने किया था। महापुरुषों ने अपनी त्याग-तपस्या के बल पर मनुष्य सभ्यता को विकास के पथ पर अग्रसर करने का भगीरथी प्रयत्न किया। जब उन्हें इस बात को कोई इल्म नहीं था कि दुनिया कितनी है, तभी उनके करुणापूर्ण हृदय से 'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन अनातुरम' अर्थात मेरे गांव में परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो और 'आ नो भद्राः क्रतवो यंतु विश्वतः' अर्थात मेरे देश में दुनियाभर के सुविचार आएं जैसे भाव निःसृत हुए। उन्होंने कभी भी विश्व से कम विचार नहीं किया। उन्होंने अपने हृदय का विस्तार करते हुए कहा, "अयं परोवेत्रिगणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुंबकम।" उन महान् विचारकों और चिंतकों ने पूरी दुनिया को कुटुंब माना और इस बात को सदैव ध्यान में रखा कि परिवार और विश्व की समस्याओं में कोई विरोधाभास नहीं हो सकता। इन समस्याओं को हल करने में साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। आज जीवन के हर क्षेत्र में मूल्यों का विघटन दिखाई दे रहा हैं। नयी शब्दावलियों को मनुष्य अपने जीवन का अभिन्न अंग मान लिया है, जैसे व्यक्ति कुंठा, अनास्था, संत्रास आदि। समाज में व्याप्त विसंगतियों को देखकर व्यक्ति बेचैन हो उसके प्रति गुस्सा जाहिर कर रहा है। यह विचार करने का समय किसी के पास नहीं है कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ? वास्तव में आज साहित्य, समाज के प्रति अपने दायित्व से विमुख हो गया है। जबसे साहित्य को पूंजी और सत्ता ने मिलकर एक जींस के रूप में प्रस्तुत किया है, तबसे समस्याएं और अधिक विकराल हो गई हैं। साहित्य का मूल धर्म तिरोहिता हो गया है। डॉ..प्रेम भारती के शब्दों में, "समाज में व्याप्त विसंगतियां, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता और इन सबके साथ पीड़ा, घुटन, क्षोभ, आक्रोश, चीख, पुकार, तनी हुई मुट्ठियां, झुकी हुई गर्दनें, सेक्स और पेट की भूख को चित्रित करना ही साहित्यकार का दायित्व नहीं है। इससे चाहे बाह्य क्रांति संभव हो सकती है, किंतु साहित्य का मूल दायित्व है - मानव मन के अंतःकरण में शुद्धता का अवतरण करना।" विज्ञान युग में हमारे दिमाग का विस्तार तो बहुत हुआ है, परंतु हृदय संकुचित हो गए हैं। सत्य, प्रेम, करुणा जैसे शाश्वत जीवन मूल्य साहित्य में प्रतिबिंबित नहीं हो रहे हैं। फलतः यथार्थवाद के नाम पर साहित्य में चाहे जैसा समाज का चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है। आज विज्ञान के कारण हमने देशों की सीमाएं लांघ ली हैं, परंतु हमारा मन पक्ष, पंथ, संप्रदाय, प्रांत और राष्ट्र की

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मार्च 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

सीमाओं में आबद्ध है। कभी धर्म हमें जोड़ने का काम करता था, आज वह तोड़-फोड़ कर रहा है। गुलामी के दिनों में राजनीति ने हमारे दिलों में एक देश की भावना मजबूत की परंतु आज वही दिलों में विभेद पैदा कर रही है। बाजार की शक्तियों से मनुष्य का जीवन संचालित हो रहा है। इन सबसे मुक्ति का उपाय साहित्य में दिखायी नहीं दे रहा है। अतीत में जब भी समाज के सामने संकट उपस्थित हुआ है तो साहित्य ने समाज के सामने उसका हल प्रस्तुत किया है। वह तब हो पाया जब साहित्यकारों ने स्वयं को समाज प्रवाह से अलग होकर रचनाएं लिखीं। साहित्य के सामने आज दो प्रश्न उपस्थित हैं: धर्म और राजनीति आउटआफ डेट हो गए हैं और बाजार की शक्तियों को कैसे तोड़ा जा सकता है ? प्रस्तुत शोध पत्र में आज के परिप्रेक्ष्य में संत विनोबा के साहित्य संबंधी विचारों का अवलोकन किया गया है।

विषय प्रवेश

आज दुनिया के सामने तीन प्रश्न मुख्य हैं जिनका समाधान साहित्य और साहित्यिकों को खोजना है। एक तो धार्मिक संस्थाओं की उपयोगिता, दूसरा राजनीति और राजनीतिक संस्थाएं और तीसरा इन दोनों को संचालित करने वाली बाजार की शक्ति। आज पूरी दुनिया की मानवता इन तीनों से त्राण पाने का उपाय खोज रही है, परंतु कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है। समाज को बदलने का काम साहित्य ही करता है। इस सृष्टि के आरंभ से अब तक मनुष्य के परिष्कृत हृदय ने उन्नत कोटि के साहित्य की रचना की है और ऐसे साहित्य ने करोड़ों लोगों के जीवन की दिशा और दशा बदलने का काम किया है। ऐसे साहित्य को समाज ने शाश्वत साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया है। समाज को संस्कृत बनाने का काम साहित्य ही करता है। उसमें सौंदर्य बोध जाग्रत करता है। मिथिलेश्वर ने अपनी पुस्तक 'साहित्य की सामाजिकता' में लिखा है, ''अब भी समाज को साहित्य ही बचा सकता है। निरंतर संवेदनहीन, भोगवादी, अराजक और बाजारू होते संसार को फिर साहित्य ही मानवीय और मर्यादित कर सकता है।''1

धर्म, राजनीति और बाज़ार

आज परिवार से लेकर दुनिया तक के मसलों को हल करने की पुरजोर कोशिशें चल रही हैं। आज के सवाल धर्म और राजनीति से ही प्रसूत हो रहे हैं। आज का समाज इन्हीं दो शक्तियों के अधीन दिखाई दे रहा है। समाज के सभी वर्गों की आशाएं इन्हीं दो संस्थाओं पर टिकी हुई हैं। आज का अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल इन्हीं दोनों का बंधक बना हुआ है। इन क्षेत्रों से उपजी समस्याओं को धर्म और राजनीति से हल करने के प्रयास दुनियाभर में किए जा रहे हैं, परंतु उलझनें निरंतर बढ़ती जा रही हैं। 'जिसको हम धर्म पंथ कहते हैं, उसके दिन अब नहीं रहे। पुराने गलत विचारों पर श्रद्धा, परमेश्वर प्राप्ति के लिए तरह-तरह की पूजा आदि के प्रकार, ढोल बजाकर भगवान को पुकारने का प्रकार, ये सब चीजें निकम्मी हैं और अब जाने वाली हैं। केवल आध्यात्म-विद्या टिकने वाली है और विज्ञान टिकेगा। आज के सवाल विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय से हल होंगे और यह करने की जिम्मेदारी साहित्यकार की है। 'साहित्य को इन दो शक्तियों को जोड़ने का काम करना होगा।''2 दुनिया में आज तक जो ताकतें काम करती थीं, उनमें से कई अब क्षीण हो रही हैं, वे खत्म होने वाली हैं। उनकी जगह कुछ नयी ताकतों ने जोर

पकड़ा है। क्षीण होने वाली ताकतों में प्रमुख हैं धर्मपंथों की ताकत। यद्यपि आज के जमाने में धार्मिक कट्टरता बढ़ी हुई दिखायी देती है, परंतु लोगों के जीवन से धर्म तत्व बेदखल हो गया है। एक समय में धर्मों ने मनुष्य को जोड़ने का काम किया, परंतु आज वह फिरकों में बंटकर तोड़ने का काम कर रहा है। ऐसे ही दूसरी ताकत राजनीति की है। धर्म के समान ही राजनीति ने लोगों को जोड़ने का काम किया, परंतु उसने तोड़ा-फोड़ा भी है। एक देश की राजनीत एक-दूसरे को अलग करती है। आज धर्म और राजनीति पर विज्ञान बार-बार प्रहार कर रहा है। दुनिया के धर्मग्रंथों में सूर्य के घूमने का उल्लेख मिलता है, परंतु विज्ञान ने बताया कि सूर्य स्थिर है, धरती घूमती है। आज देशों की सीमाओं का उल्लंघन कर मनुष्य ने अंतरिक्ष में छलांग लगाई है। दुनिया के वैज्ञानिकों ने विभिन्न देशों के भीतर चलने वाली राजनीति को दरकिनार कर अनेक नये आविष्कार किए। इस तरह धर्म और राजनीति ये दो शक्तियां खत्म होने की कगार पर हैं। उनके दिन लद चुके हैं। विनोबा के अनुसार, "अब दो शक्तियां काम करने वाली हैं - एक है विज्ञान और दूसरी है अध्यात्म।" ये दोनों ताकतें मनुष्य के जीवन को आकार देने वाली होंगी।"3 उनके अनुसार अब ये धर्म, पंथ, राजनीति नहीं चलेंगे। आज उनका जोर दीखता है। लेकिन दीपक बुझने के समय जरा बड़ा बनता है और फिर बुझ जाता है। वैसे ही सारी राजनीति, धर्म वगैरह जोर कर रहे हैं, बुझने के पहले।'

आज वैश्वीकरण का नारा तो जोर से लगाया जा रहा है, परंतु इसके मूल में विस्तारवादी अवधारणा है। यह भोगवादी संस्कृति का पोषक है। इस विचार ने पूरी दुनिया को बाजार में परिवर्तित कर दिया है। इस बाजारवादी संस्कृति के गुण-दोषों पर साहित्य में काफी चर्चा हो रही है, परंतु इसके विस्तार से निजात पाने का उपाय नजर नहीं आ रहा है। इससे मुक्ति का उपाय न तो वैज्ञानिकों के पास है न साहित्यिकों के पास। इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि, "जब तक वैज्ञानिक अपनी बुद्धि को बेचना बंद नहीं करेंगे, साहित्यिकों के नाम से जो लोग आज दुनिया के सामने पेश हैं, वे अपनी वाणी को बेचना बंद नहीं करेंगे, तब तक दुनिया विकास नहीं कर सकेगी। झूठे और नकली वैज्ञनिकों ने अपनी बुद्धि और साहित्यिकों ने अपनी वाणी बेचकर सारी दुनिया को खतरे में डाल दिया है।"4

बाजार का आदर्श स्थितियों से सदा विरोध रहा है, जबकि साहित्य की आधारशिला आदर्श है। "जिस साहित्य में समाज के यथार्थ रूप से अधिक आदर्श रूप की प्रतिष्ठ होती है, वही साहित्य अधिक महान होता है।" आज ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान और तकनीक के युग में साहित्य समाज से दूर हो गया है। कविता के मरने की घोषणा की जा रही है। समाज को साहिसंदर्भ ग्रंथ: त्य से कोई सरोकार नहीं रह गया है तो प्रश्न यह भी है कि साहित्य को समाज की चिंता है क्या ? भूमंडलीकरण के दौर में आज सब कुछ बाजार हो गया है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह गया है। इसलिए आज के साहित्य को एक नयी संज्ञा दी गयी है 'बाजारू साहित्य।' आज के साहित्यकारों का मन समाज के यथार्थ चित्रण में अधिक रमा है। मन के स्तर की रचनाएं होने से एक समय बाद वे रचनाएं कहीं विलुप्त हो जाती हैं। विनोबा लिखते हैं, "आज साहित्य भी बाजार का गुलाम बना है। वह बाजार की शक्तियों से संचालित हो रहा है।

"यद्यपि साहित्यिकों की शक्ति असीम है, वह बाजार में नहीं जा सकती। वह बाजार को तोड़ने वाली होगी। साहित्यिकों का काम है कि वह आज के बाजार को खत्म करें।"5

जब भी समाज के जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों से संबंधित समस्याएं खड़ी होती हैं, नैतिक प्रश्न उपस्थित होते हैं, तब वह शाश्वत साहित्य की ओर दृष्टिपात करता है। समाज अपने विकासक्रम में शब्दब्रह्म की उपासना करता रहा है। मुंशी प्रेमचंद ने लिखा है, "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।"6

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं आज के महत्वपूर्ण सवाल हैं, और आज के साहित्य में इनका चित्रण बहुत हो रहा है। लेकिन समाज को साहित्य से जो अपेक्षा है, वह पूरी नहीं हो रही है। "जमाना किधर जा रहा है, किधर जाना चाहिए, इसका कोई खास भान साहित्यिकों को नहीं दीखता है। वे तो उससे उलटी दिशा में ही जा रहे हैं। जगह-जगह अपने आसपास छोटी-मोटी समस्याएं हैं और छोटे-मोटे सुख-दुःख दीख पड़ते हैं, उनमें साहित्यिक उलझ जाते हैं और उसके कारण उस पार का दर्शन उन्हें नहीं होता। उनमें करुणा होती है, लेकिन उसकी गहराई बहुत कम होती है। कुछ साहित्यिक मजदूरों का वेतन बढ़े, उतने में ही अपनी करुणा समाप्त कर लेते हैं। कुछ की करुणा कुटुंब-नियोजन के काम में ही समाप्त हो जाती है। ऐसे छोटे-छोटे कामों में अपनी कारुण्य वृत्ति को, सहानुभूति को, जो कवि हृदय के लिए बहुत आवश्यक होती है वे समाधान दे लेते हैं और छोटे-छोटे मसलों में उनका चित्त गिरफ्तार हो जाता है।"7 आज के साहित्य पर टिप्पणी करते हुए विनोबा कहते हैं, "आज हमारी साहित्यनिष्ठा ऐसी है कि चाहे सत्य भले ही मर जाए, लेकिन साहित्य जीता रहे।"8 आज शब्दशक्ति कुंठित हो गई है। आचार और व्यवहार में इतना अधिक अंतर होने के परिणामस्वरूप शब्दों ने अपना प्रभाव खो दिया है। ऐसा मान लिया गया है कि साहित्य में कहे-लिखे गए शब्द और जीवन में व्यवहार के शब्दों में अंतर होना चाहिए। इसलिए साहित्य भले ही अहिंसा, सत्य की पैरवी करता दिखाई दे, परंतु समाज की मान्यताएं उससे विपरीत ही दिखाई देती हैं। आज जीवन की समस्याओं को न तो धर्म हल कर पा रहा है और न राजनीति। दोनों में ही कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट नजर आ रहा है। विज्ञान के अनुसार मनुष्य का जीवन नहीं बनने से ही समस्याएं दिखाई दे रही हैं। आज साहित्य समाज से दूर जा पड़ा है।

साहित्य और समाज के संबंधों की चर्चा आज जोरों पर है। वास्तव में मनुष्य जीवन के रागात्मक विकास का दूसरा नाम साहित्य है। इसलिए साहित्य और समाज के पारस्परिक संबंध की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। ऐसे अनेक उदाहरणों से सिद्ध किया जा सकता है कि आज साहित्य समाज की यथास्थिति का चित्रण कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ रहा है। साहित्यकार इसका प्रयोग कच्चे माल की तरह कर रहा है। यह स्वाभाविक भी है। साहित्यिक

का ध्यान सृष्टि की सभी बातों की ओर जाता है। वह भला-बुरा, गुप्त-प्रकट, वर्तमान-भविष्य, सभी चीजों का ध्यान रखता है। लेकिन वह सब कुछ संकुचित दृष्टि से करता है। वह ऐसे विषयों का वर्णन कर रहा है, जिससे समाज उन्नत होने के बदले गलत शब्दों के प्रयोग से अवनत हो गया है। ''आज हम पुराने शब्दों को छोड़कर नये शब्द 'इम्पोर्ट' करते हैं। उसका असर हमारे चिंतन पर पड़ता है। हमारे चिंतन में विचार दोष आता है। हमको अपना चिंतन ठीक ढंग से करना चाहिए, तभी हिन्दुस्तान का अपना मौलिक चिंतन होगा। आज बाहर से इम्पोर्टेड शब्द लाते हैं और हमारी भाषा पर लादते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे जीवन वह एसिमिलेट नहीं होता, हजम नहीं होता, एकरूप नहीं होता।''9

आज हमें समस्याओं के अहिंसक हल नहीं सूझ पड़ रहे हैं। अनेकानेक कारणों से शब्द अपना अर्थ खो बैठे हैं। यह आगे की प्रगति के लिए बड़ा खतरा है। समाज में शब्दशक्ति की पुनः स्थापना का काम साहित्यिकों का है।

निष्कर्ष

आज शब्दों में नया अर्थ भरने और समाज के सामने नया चिंतन प्रस्तुत करने के लिए साहित्यकारों पर महती जवाबदारी है। विज्ञान के क्षेत्र में नित नवीन खोजें हो रही हैं। वह साहित्य में वर्णित कल्पनाओं को वास्तविकता के धरातल पर उतार रहा है। आज विज्ञान से आगे विचार करने की आवश्यकता है। साहित्यकारों को अपना चिंतन वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत करने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ

1 हिन्दी साहित्य: युग और धारा: कृष्णनारायण मगध, पृष्ठ 5

2 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 67

3 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 66

4 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 78

5 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 82

6 मुंशी प्रेमचंद: साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ 24-25

7 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 87

8 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 89

9 विनोबा साहित्य: खण्ड 12, साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान, पृष्ठ 45